शोध सार

शिक्षा से वंचना की स्थितियां

राजाराम भादू

आर्थिक उदारीकरण के दौर में राज्य का कल्याणकारी चरित्र बदल गया है। ऐसा लगता है कि अब वह पूंजी के एजेंट के रूप में काम कर रहा है और जनहित के कार्यों से हाथ खींच रहा है। इसके चलते बराबरी और न्याय जैसे सामाजिक मूल्य कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं। यह शोध वंचना के विभिन्न रूपों की पड़ताल करता है।

लेखक परिचय

द्वैमासिक 'संस्कृति मीमांसा' के संपादक, स्वयंसेवी संगठन समान्तर 'सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च' के कार्यकारी निदेशक (मानद) हैं।

भारत में सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में एक्टिविज्म के साथ अकादमिकों की जुगलबंदी ने निर्णायक असर डाला है। इस सिलसिले में सबसे पहले सामाजिक सरोकार रखने वाले अर्थशास्त्रियों के समूह ने आर्थिकी पर वैकल्पिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना शुरू किया। वैश्विक स्तर पर जिस तरह वर्ल्ड इकॉनॉमिक फोरम का रचनात्मक प्रतिकार वर्ल्ड सोशल फोरम बनकर उभरा। कुछ उसी तरह प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कमल नयन काबरा की पहल पर केन्द्र सरकार द्वारा बजट से पूर्व प्रस्तुत होने वाले आर्थिक सर्वेक्षण का रचनात्मक प्रतिकार प्रस्तुत होने लगा। इसकी महत्ता समझने के लिए भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारवाद के चलते बदले विश्व-परिदृश्य को देखना होगा। भूमंडलीकरण को प्रकारान्तर से पूंजीवाद की विजय के रूप में ही देखा जा रहा था। दुनिया के बड़े देशों ने अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की रीति-नीति को ढाल लिया था। वहीं विकासशील देशों पर पूंजी के वर्चस्व को स्थापित करते हुए उनके प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए राष्ट्रीय नीतियों को बदलने पर जोर था। अपने हित में पूंजी के निर्बाध प्रवाह के लिए वर्ल्ड इकॉनॉमिक फोरम में सालाना योजना बनाई जाती थी। विकासशील देशों की सरकारें विकास के नाम पर अपने यहां बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए रास्ते और तंत्र निर्मित करती थीं।

भारत में नए दशक से शुरू हुई आर्थिक उदारीकरण की नीतियां कथित विकास के एजेंडे को प्रचारित करके ही आगे बढ़ाई जा रही थीं। जबकि वास्तविकता में राज्य अपने कल्याणकारी चरित्र को बदलता हुआ पूंजी के एजेन्ट की भूमिका में आता जा रहा था। जहां देश की आधी आबादी ठीक से शिक्षित नहीं है वहां अर्थशास्त्र के जटिल आंकड़ों की समझ कितने लोगों के पास है। आजादी के बाद से ही देश के अकादमिक और शोधकर्ता सामान्यतः सत्ता के तंत्र से ही संबद्ध रहे हैं अन्यथा अंग्रेजी की अपनी एलीट दुनिया में निरपेक्ष रहे हैं। एक अपवाद की तरह कुछ अकादमिक और शोधकर्ताओं ने अपने को सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया से संबद्ध किया है। नवें दशक से ही हम सुखद तथ्य की तरह उक्त

अपवाद को एक प्रवृत्ति में बदलते हुए भी देखते हैं, जब कई लोग भारतीय प्रशासनिक तंत्र से बाहर आकर परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ते हैं। जब अकादमिक और शोधार्थियों की एक कतार विकास के तथाकथित मिथक को प्रश्नित करती है। चमकीले भारत के बरक्स सच्चे भारत की धूसर और बदरंग तस्वीर प्रस्तुत की जाती है। वैकल्पिक आर्थिक सर्वेक्षण ने आर्थिक उदारीकरण के कुफलों को उद्घाटित किया और उन नीतियों का पर्दाफाश किया जो पूंजी के दोहन के लिए निर्मित की गई थीं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रोब रिपोर्ट ने ऐसी ही भूमिका निभाई। तदनन्तर शिशुओं के विकास पर फोकस रिपोर्ट ने भी कई आंखें खोल देने वाले तथ्य उजागर किए।

'इंडिया एक्सक्लुजन रिपोर्ट 2013-14'* इसी शृंखला में एक और महत्त्वपूर्ण प्रयास है। भारत में वंचित और हाशियाकृत समुदायों की स्थिति की विवेचनात्मक तस्वीर प्रस्तुत करने वाली यह रिपोर्ट पिछले कुछ वर्ष से सालाना स्तर पर जारी की जा रही है। इस रिपोर्ट में स्थानीय, जिले, राज्य से राष्ट्रीय स्तर तक वंचना के हालातों का प्रस्तुतिकरण किया जाता है। इस रिपोर्ट को जारी करने का मूल उद्देश्य ठोस तथ्यों के आधार पर जन समुदायों की वंचना की स्थितियों पर विचार-विमर्श को आगे बढ़ाना है। इसी के आधार पर सरकारी रीति-नीतियों को प्रश्नित और परिवर्तित किया जा सकता है। यह रिपोर्ट नागरिक समाज को एक मजबूत आधार प्रस्तुत करती है जो हाशियाकृत और अपवर्जित समूहों को वास्तविक विकास की मुख्यधारा में लाने के लिए सन्नद्ध है।

इंडिया एक्सक्लुजन रिपोर्ट 2013-14 पांच भागों में विभाजित है। पहला भाग हाशियाकृत और वंचित समुदायों के संदर्भ में लोक हित के मुद्दों की विवेचना करता है। इसमें लोकहित की मुख्यतः चार श्रेणियों को सम्मिलित किया गया हैः

1. सामाजिक सेवाएं- इनमें मुख्यतः शिक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, पोषण और सामाजिक सुरक्षा शामिल है। इस बार की रिपोर्ट में शिक्षा पर विस्तार से विवेचन किया गया है।
2. सार्वजनिक ढांचागत क्षेत्र- इसके अन्तर्गत आवास, जल, स्वच्छता, विद्युत, सिंचाई और शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अन्य मसले हैं। इस बार की रिपोर्ट में शहरी आवास पर ज्यादा फोकस किया गया है।
3. आजीविका, श्रम, भूमि और प्राकृतिक संसाधन- इस भाग में इन श्रेणियों से संदर्भित उत्पादन, वन, चारागाह और जल स्रोत, कृषि भूमि और आजीविका से जुड़े मुद्दे शामिल हैं। बदलती स्थितियों में श्रम बाजार की 'शालीन काम' की धारणा के साथ विवेचना की गई है।
4. विधि और न्याय- कमजोर समूहों के लिए वंचना की स्थितियां विधि और न्याय के संदर्भ में भयावह रूप ले लेती हैं। विधिक सहायता और न्यायिक प्रक्रिया के प्रसंग में वंचना को देखना जरूरी कार्यवाही है। इस बार भारत में आतंकवाद विरोधी कानूनों की क्रियान्विति के असर को कमजोर समूहों के संदर्भ में देखा गया है।

रिपोर्ट में लोकहित की इन चार श्रणियों के संदर्भ अपवर्जन की स्थितियों को निम्न संरचना में देखने की कोशिश की गई हैः

1. लोक हित की प्रकृति- लोकहित की प्रकृति पर विचार करते हुए अपवर्जन की स्थितियों की माप-जोख की गई है जिसमें इसके वैधानिक, कार्यक्रम आधारित और नियामक तंत्र को भी शामिल किया गया है।
2. अपवर्जित समूह- अपवर्जित समूहों की समग्रता में पहचान करते हुए इन्हें श्रेणीबद्ध किया गया है।

* इंडिया एक्सक्लुजन रिपोर्ट 2013-14, यह रिपोर्ट एक सामूहिक प्रयास से तैयार की गई है जिसमें कई संस्थानों, संस्थाओं, समूहों और व्यक्तियों की भागीदारी रही है। इनमें अर्थ-आस्था (दिल्ली), अनेका (बंगलोर), बाडन यूनिवर्सिटी प्रोविडेंस (यू. एस. ए.), सेन्टर फोर बजट एण्ड गवर्नेंस अकान्टेबिलिटी (दिल्ली), सेन्टर फोर इक्विटी स्टडीज (दिल्ली), सेन्टर फोर सोशल इक्विटी एण्ड इन्क्लुजन (दिल्ली), इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ ह्यूमन सेन्टलमैंट्स (बंगलोर), इस्स्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, ससेक्स (यू.के.) नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशन प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेक्शन (दिल्ली), न्यू एजुकेशन ग्रुप-फाउन्डेशन फोर इन्नोवेशन एण्ड रिसर्च इन एजुकेशन (दिल्ली) और निरंतर का विशेष उल्लेख है। रिपोर्ट के मुख्य संपादक हर्ष मंदर ने इस सहयोग भावना को रेखांकित करते हुए इसे लोकहित का मूलाधार कहा है।

3. वंचना के कारक- ऐसे तंत्र को विश्लेषित करने पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसके चलते अपवर्जन घटित होता है। इन्हें व्यापक रूप से चार स्तरों पर श्रेणीकृत किया गया है-

   विधि और नीति का दोषपूर्ण ढांचा;

   विधि और नीति के क्रियान्वयन में संस्थागत पूर्वाग्रह;

   राज्य द्वारा सक्रिय हिंसा और विभेद;

   विधि और दोषपूर्ण बजट आवंटन।

4. अपवर्जन के परिणाम- वंचित समूहों में वंचना की स्थितियों के परिणामों का व्यापक समाज के संदर्भ में विवेचन किया गया है जिसे प्रकारान्तर से इसकी कीमत चुकानी है।

5. समाधान और जरूरी सुधार- रिपोर्ट में समस्या के समाधान और जरूरी सुधार प्रस्तावित किए गए हैं।

रिपोर्ट के दूसरे भाग में केन्द्र और राज्य सरकारों के बजट और नियोजन प्रक्रिया को विश्लेषित किया गया है जो महिला, दलित, आदिवासी, मुस्लिम और निःशक्त समूह जैसी वंचित श्रेणियों से विभेद करती है अथवा इन्हें उपेक्षित करती है। तीसरे भाग में सर्वाधिक वंचित समूहों, श्रेणियों और समुदायों को चित्रित किया गया है। इसका उद्देश्य ऐसे समूहों में वंचना के कारण घटित भयावह और मानवीय स्थितियों का निरूपण कर उनकी दैनंदिन जिंदगी की दुश्वारियों का सामने लाना है। इस बार की रिपोर्ट में किन्नर समुदाय, बंधुआ श्रमिकों और मुसहरों पर विस्तृत विवेचना है।

आखिरी भाग में वंचना की स्थितियों को दर्शाने वाले आंकडों और सांख्यिकी का श्रेणीवार प्रस्तुतिकरण है।

◇◇◇

अपवर्जन के अवधारणात्मक ढांचे में लोक हित, अपवर्जन और इसके संदर्भ में राज्य की भूमिका को रिपोर्ट के आरंभ में विवेचित किया गया है। यहीं इस बात को तार्किक आधार देने की कोशिश की गई है कि अपवर्जन से मुक्ति क्यों समाज के बजाय राज्य का कार्यभार है। लोकहित ('पब्लिक गुड') से जुड़ी सेवाएं इसलिए अनिवार्य हैं ताकि हर व्यक्ति एक गरिमापूर्ण जीवन जीने में समर्थ हो सके। रिपोर्ट में यह मान्यता लेकर चला गया है कि लोकहित में ऐसी सभी सेवाएं प्रदान करना राज्य की जवाबदेही है जिनसे प्रत्येक व्यक्ति एक गरिमापूर्ण जीवन जीने की सामर्थ्य हासिल कर सके।

लोकहित से जुड़ी ऐसी सेवाओं को कीन्सवादी अर्थशास्त्रियों सहित नवशास्त्रीय और कल्याणकारी अर्थशास्त्री सिद्धान्तों में कई प्रकार से परिभाषित किया गया है। 'पब्लिक गुड' प्रत्यय को सबसे पहले 1776 में एडम स्मिथ ने प्रस्तावित करते हुए कहा था कि कुछ चीजों को सिर्फ मुनाफे के गणित से नहीं देखा जा सकता। अपने निष्कर्ष में लोकहित की इन सेवाओं को प्रदान करने की जिम्मेदारी एडम स्मिथ ने राज्य पर डाली थी। रिपोर्ट में इसी समझ को आधार बनाकर इसे राज्य का कार्यभार माना गया है कि यह सभी लोगों के लिए समतामूलक और न्यायोचित लोकहित सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करे। लेकिन हम देख रहे हैं कि वर्तमान में राज्य लोकहित से जुड़ी सेवाओं से पीछे हटता जा रहा है।

लोक कल्याणकारी अर्थशास्त्र लोकहित में ऐसी प्रतिद्वंद्विता विहीन और वर्जनाहीन चीजों को सम्मिलित करता है जो हर व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। इनके एक बेहतर उदाहरण के रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा को रखा गया। क्या इसे बाजार पर छोड़ा जा सकता है। लोकहित की चीजों को कई बार निजी हित की चीजों से उलट देखा जाता है। लेकिन इसका सर्वोपरि गुण सामाजिक मूल्य है जो खरीदने और बेचने वाले से ऊपर है।

वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक विश्लेषणों में लोकहित के मुद्दों को व्यापारिक प्रक्रियाओं से जोड़कर देखने की

कोशिशें हो रही हैं। शिक्षा को दुनिया भर में लोकहित का मसला माना जाता रहा है लेकिन इधर इसे दूसरी ओर ले जाने की कोशिशें की जा रही हैं। इंगे कॉल और रोनाल्ड मेन्डोजा ने लोकहित की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहा कि इन्हें बाजार द्वारा नहीं बल्कि सार्वजनिक नीतियों द्वारा परिभाषित किया जाना चाहिए। उन्होंने बताया कि कैसे जल, जंगल और जमीन लोकहित से जुड़े संसाधन हैं। लोकहित समाज और सार्वजनिक नीति के अटूट संबंध से निर्धारित होता है। यह समाज की प्राथमिकताओं से भी तय होगा। उदाहरण के लिए, भारत में शिक्षा को पहले सर्वोच्च न्यायालय ने मूल अधिकार माना, उसके बाद संविधान में संशोधन द्वारा इसे मूल अधिकारों में शामिल किया गया और फिर इसे लोकहित का मुद्दा मानते हुए इसके लिए कानून पारित किया गया। जबकि एक तबका जो निजी शिक्षण संस्थानों से जुड़ा था, इसे लोकहित का मुद्दा मानने के लिए राजी नहीं था। अभी भी एक समूह ऐसा मानता है कि शिक्षा तब तक लोकहित का सही रूप अख्तियार नहीं कर सकती जब तक कि देश में समान स्कूल प्रणाली लागू नहीं हो जाती।

इस रिपोर्ट में लोकहित के लिए संवैधानिक, वैधानिक ढांचों और अन्तर्राष्ट्रीय प्रस्तावों के अतिरिक्त नैतिक सिद्धान्तों को भी आधार बनाया गया है। इसमें सर्वोपरि हर व्यक्ति में अन्तर्निहित समान गरिमा को मान्यता देना है। इसके मायने हुए कि लोकहित वे हैं जो हर व्यक्ति को बुनियादी मानवीय गरिमापूर्ण जीवन जीने में सक्षम बनाते हैं। यदि कुछ व्यक्ति किन्हीं अभावों के चलते मानवीय गरिमा से युक्त जीवन नहीं जी पा रहे हैं तो इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

लोकहित की इस अवधारणा में सौहार्द और बन्धुत्व की नैतिकी भी समाविष्ट हो जाती है, जिसके चलते यह हमारे कर्तव्य हो जाता है कि किसी भी व्यक्ति को जैविक, सामाजिक, आर्थिक या अन्य किसी आधार पर नकारे या वंचित नहीं कर दिया जाए। इस तरह से गरिमापूर्ण जीवन हर व्यक्ति का नैतिक अधिकार है और हर व्यक्ति की गरिमा और उसके वजूद की स्थापना सबसे बड़ा लोकहित है। असल में गरिमा अन्य चीजों का कुल जमा प्रतिफल है।

जो व्यक्ति किसी शारीरिक अक्षमता, बीमारी या वृद्धावस्था के कारण देश की 'उत्पादकता' में कोई योगदान नहीं कर पा रहा है, वह इसी नैतिकी के आधार पर अन्य लोगों से भी कहीं ज्यादा सभी सेवाओं का हकदार होता है। ऐसे सभी नैतिक अधिकार भारतीय संविधान और विधि का हिस्सा नहीं हैं बल्कि संविधान सभा में लम्बी बहस के बाद भी सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को मूल अधिकारों में शामिल नहीं किया गया था। लेकिन इनकी प्रतिध्वनियां हम नागरिक और राजनीतिक अधिकारों में सुन सकते हैं जिनमें जीवन और स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति और संगठन बनाने की आजादी आदि शामिल हैं। संविधान सभा ने इनमें से अधिकांश को नीति निर्देशक तत्वों में रखा था जिनकी कोई विधिक महत्ता नहीं थी।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में संविधान की धारा 21 में जीवन के मूलभूत अधिकार के परिप्रेक्ष्य में कई सामाजिक और आर्थिक हकों को मान्यता दी है। जीवन के अधिकार को गरिमापूर्ण जीवन के रूप में देखने पर पर्याप्त पोषण, स्वास्थ्य सुरक्षा, शिक्षा, शालीन काम, आवास और सामाजिक सुरक्षा जैसे लोकहित के मुद्दे अनिवार्यतः सामने आते हैं। इनके लिए उठी आवाजों के चलते सरकार ने कई कानून पारित किए हैं जिनमें काम और शिक्षा का अधिकार शामिल हैं। लोकहित के कई मुद्दों पर जारी अन्तर्राष्ट्रीय चार्टरों को स्वीकार करते हुए भारत ने हस्ताक्षर किए हैं जिनमें बच्चों महिलाओं और निःशक्तों के अधिकार और अल्पसंख्यक मूल वासियों के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकार शामिल हैं।

दुनिया के अनेक देश लोकहित के मुद्दों को संविधान में जगह देते जा रहे हैं। ब्राजील ने सभी लोगों के स्वास्थ्य के मद्देनजर पारिस्थितिकी-संतुलन को लोकहित माना है। इस तरह से लोकहित मूलभूत लोकतांत्रिक सिद्धान्तों में मानवीय गरिमा, समता, स्थायित्व और सौहार्द से जुड़ा है। लोकहित की कोई स्थिर परिभाषा नहीं है। यह वंचित और हाशियाकृत समूहों की सामाजिक कार्यवाहियों और राजनीतिक आवाजों के सापेक्ष पुनर्परिभाषित होती जाती है।

'इंडियन एक्सक्लुजन रिपोर्टः 2013-14'
प्रकाशक : बुक्स फोर चेंज,
139, रिचमोण्ड रोड, बैंगलोर-560025
मूल्य : 995 रुपये (पेपरबैक)

इस रिपोर्ट में अपवर्जन को उन प्रक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया गया है जो व्यक्तियों और जन समूहों को विषमतामूलक सामाजिक बाधाओं, क्षमताओं, विकास, न्याय अथवा गरिमा के विरुद्ध अवरोधों के चलते लोकहितों से वंचित कर देती हैं। इन अवरोधों के बहुत से रूप हो सकते हैं। जिनमें समाज या राज्य की उपेक्षा, विभेद, नकार, हिंसा, विस्थापन या पारंपरिक-सांस्कृतिक मान्यताएं अथवा दोषपूर्ण कानून, नीतियां या कार्यक्रम अथवा उनका क्रियान्वयन सम्मिलित हैं। हम देख रहे हैं कि अपवर्जन के उत्पादन और पुनरुत्पादन में राज्य, बाजार और समाज (बल्कि समाज के कुछ खास किरदारों) की दुरभिसंधि है। लेकिन रिपोर्ट ने अपवर्जन के तमाम रूपों के लिए राज्य को ही प्रमुखतः उत्तरदायी माना है। राज्य का संवैधानिक और वैधानिक कर्तव्य है कि यह बाजार का नियमन करे और सामाजिक विभेदों को समाप्त करे। लोकतंत्र में राज्य की ही वंचना के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है क्योंकि लोक कल्याण उसका नैतिक कर्तव्य है। राज्य वंचना और विभेदों को समाप्त करने के लिए लागू की गई विधियों, कार्यक्रमों और क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। उसे ही लोकहितकारी सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होती है।

◇◇◇

यहां हम रिपोर्ट से शिक्षा के खंड का प्रासंगिक तौर पर उल्लेख कर रहे हैं। इसकी शुरुआत रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन में एक सामान्य सूत्र से की गई है। इनका दर्शन मानता है कि शिक्षा में सामाजिक समता, समान सहभागिता और न्याय की ओर रूपान्तरण के मूल्य अन्तर्निहित हैं। इन्होंने शिक्षा को लोकहित के रूप में देखते हुए राज्य से देश के सभी बच्चों का समान शिक्षा उपलब्ध कराने की अपेक्षा की है।

डॉ. अम्बेडकर के लिए शिक्षा गहरे अर्थ में राजनीतिक थी। वंचित वर्गों के लिए इसका महत्त्व इसलिए भी था कि यह उन्हें एक नागरिक के रूप में सक्षम बनाने का औजार थी। एक सचेत और विवेकशील नागरिक के रूप में वे लोकतंत्र में अपनी भूमिका तय कर सकते थे। अपने प्रति पूर्वाग्रहों से लड़ते हुए वे सामाजिक परिवर्तन की ओर आगे बढ़ सकते थे।

इसी संदर्भ में उचित ही यह सवाल उठाया जाता है कि निजी क्षेत्र शिक्षा को लोकहित का मुद्दा क्यों नहीं मानता है। दुर्भाग्य से सरकारी स्कूलों में शिक्षा की वैसी गुणवत्ता नहीं है और निजी स्कूल इस संदर्भ में कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति उन्नीकृष्णन की संविधान पीठ ने 1993 में शिक्षा को मूल अधिकार की मान्यता दी। सन् 2002 में 86वें संविधान संशोधन के जरिए 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार माना गया। तद्नन्तर 2009 में संसद ने 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून पारित किया।

शिक्षा को लोकहित का मुद्दा मानना इसलिए भी लाजिमी है कि गरीबी और सामाजिक वंचना के चलते देश के बहुसंख्यक लोगों के लिए बच्चों को निजी स्कूलों से शिक्षा दिलाना संभव ही नहीं है। शिक्षा के अधिकार ने देश के हाशियाकृत और वंचित परिवारों के करोड़ों बच्चों के लिए उम्मीद की धुंधली-सी किरण दिखाई है। वास्तविकता यह है कि अभी भी अनेक बच्चे स्कूलों में भेदभाव के शिकार हैं और बहुत सारे बच्चे शैक्षिक विषमता को सह रहे हैं। असल में बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य समान शिक्षा की आवश्यकता है।

कौनसे बच्चे शिक्षा से वंचित हैं, इस सवाल पर रिपोर्ट ने जरूरी आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। सरकारी दस्तावेजों का दावा है कि करीबन शत-प्रतिशत बच्चों का स्कूलों में नामांकन हो चुका है। रिपोर्ट सवाल उठाती है कि यदि ऐसा है तो

फिर गलियों के बच्चों (स्ट्रीट चिल्ड्रन्स) की अनदेखी की जा रही है। एक अध्ययन में पाया गया था कि अकेले दिल्ली शहर में 2011 में 50 हजार बच्चे गलियों में विद्यमान थे जिनमें बमुश्किल 20 प्रतिशत ने ही थोड़ी-बहुत औपचारिक शिक्षा पाई थी। यूनीसेफ की 1994 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में एक करोड़ 10 लाख बच्चे स्कूलों से बाहर (यानी स्ट्रीट चिल्ड्रन) थे। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2001 में ये संख्या बढ़कर एक करोड़ 20 लाख हो गई जबकि इसी दौरान गैर-सरकारी एजेन्सियों के अनुसार ऐसे बच्चों की संख्या 6 करोड़ के आसपास थी। चाइल्ड राइट्स एण्ड यू (क्राई) के अनुसार देश में 50 लाख बच्चे वेश्यावृत्ति में लिप्त हैं जिनमें से 71 प्रतिशत अशिक्षित हैं। एक अनुमान के अनुसार 60 लाख बच्चों की विस्थापन के कारण पढ़ाई छूट गई। सन् 2011 के आखिर तक विभिन्न कारणों से करीबन पांच लाख लोग विस्थापित हुए। एक सर्वेक्षण के अनुसार 2011 में भारत के कुल 2 करोड़ 10 लाख एच. आई. वी. एड्स पीड़ितों में एक लाख 45 हजार 15 साल से कम उम्र के बच्चे थे। ऐसे बच्चों के लिए स्कूल लगभग निषिद्ध क्षेत्र रहा है।

प्रारंभिक शिक्षा में नामांकन की बढ़ती संख्या के बावजूद दलित, आदिवासी, मुस्लिम और निःशक्त बच्चे प्रारंभिक कक्षाओं के दौरान अथवा उसके बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। सत्र 2012-13 में प्राथमिक कक्षाओं का नामांकन 90.78 प्रतिशत था जो उच्च प्राथमिक कक्षाओं में घटकर 62.54 प्रतिशत रह गया। इन बच्चों का उपलब्धि का स्तर भी बहुत न्यून था। गरीबी बच्चों की शिक्षा से वंचना में एक अहम् कारक है। एन. एस. एस. के 64 वे चक्र (2007-08) के अनुसार निचले स्तर के 10 प्रतिशत लोगों में मुश्किल से आधे लोग ही साक्षर हैं जबकि ऊपरी 10 प्रतिशत लोगों की साक्षरता 88.4 प्रतिशत है। यह भी पाया गया है कि गरीब परिवारों में बहुसंख्या दलित, आदिवासी, मुस्लिम, एकल महिला और निःशक्त मुखिया वाले परिवारों की है जिनके बच्चे शैक्षिक वंचना झेलते हैं।

अपवर्जन की प्रक्रियाओं को लेकर रिपोर्ट कहती है कि हाशियाकृत और वंचित परिवार के बच्चों के लिए निम्न स्तर की शिक्षा के प्रावधान किए जाते हैं। उन्हें कुछ लालच देकर लुभाने की कोशिश की जाती है। सरकारी नीतियों के हिसाब से उनकी शिक्षा पर होने वाले व्यय का करीबन पूरा हिस्सा आधारभूत ढांचों पर खर्च किया जाता है। जबकि गरीब बच्चों के लिए ज्यादा महत्त्व वाली न दिखने वाली चीज शैक्षिक गुणवत्ता है जिसकी कीमत पर भौतिक ताम-झाम खड़ा किया जाता है। शिक्षा में सुधार के नाम पर सरकार सर्वोदय से लेकर नवोदय स्कूलों के मॉडल खड़े करने में लगी है जो शैक्षिक विषमता और वंचना को और अधिक बढ़ाने वाले उपक्रम हैं।

केन्द्र सरकार का प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए सबसे महत्त्वांकाक्षी कार्यक्रम है- सर्व शिक्षा अभियान। लेकिन इसमें भी शैक्षिक अपवर्जन को समाप्त करने के लिए कोई प्रतिबद्ध दृष्टि नजर नहीं आती। इसके चलते मुख्यधारा के स्कूलों की शैक्षिक गुणवत्ता में कोई खास सुधार नहीं आया। शिक्षा के अधिकार (आर.टी.ई.) से अपेक्षा है कि यह कम से कम आठ वर्ष तक हरेक बच्चे को बेहतर शिक्षा सुनिश्चित कर सकता है। लेकिन अभी तक इस अधिनियम ने ऐसी कोई शुरुआत नहीं की है। अधिनियम में अपवर्जित समूहों के बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान भी नहीं किए गए हैं।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम की अनुसूची में स्कूलों के आधारभूत ढांचे में कुछ चीजों की अनिवार्यता का प्रावधान किया गया है। लेकिन मार्च 2013 में अधिनियम के तीन वर्ष गुजर जाने के बाद भी देश के कुल स्कूलों में से मात्र 10 प्रतिशत ही इन प्रावधानों को पूरा करते थे। इस पर काफी चर्चा हो चुकी है कि यदि बालिकाओं के लिए पृथक से शौचालय नहीं होता तो उनके स्कूल छोड़ देने की संभावना बढ़ जाती है।

सरकारी रिपोर्टों के अनुसार एक कि. मी. के दायरे में प्राथमिक और 3 कि.मी. के दायरे में उच्च प्राथमिक स्कूल का प्रावधान किया गया है लेकिन इसमें अन्य बाधाओं का ध्यान नहीं रखा गया है जो बच्चे की स्कूल तक पहुंच में अवरोध उत्पन्न करती हैं। निःशक्त बच्चों के मामले में सामान्य सोच यह है कि उन्हें सिर्फ रैंप और रेलिंग की जरूरत है। जबकि वास्तव में उन्हें स्नेह और विशेष ध्यान रखे जाने की ज्यादा जरूरत है बच्चों के पाठ्यचर्या और कक्षा

शिक्षण शैक्षिक सुधारों में खुद हाशिये पर चले गए मुद्दे हैं जिनके कारण गरीब बच्चे स्कूल से बाहर हो जाते हैं। अल्पसंख्यक बच्चे इन स्कूलों से भावात्मक रिश्ता नहीं बना पाते क्योंकि ये उनके धार्मिक अनुष्ठानों की उपेक्षा करते हैं। आदिवासी और घुमन्तु परिवारों के बच्चे इन स्कूलों में सांस्कृतिक विच्छिन्नता ही नहीं अनुभव करते बल्कि भाषिक संवाद में भी असहजता महसूस करते हैं। रिपोर्ट शिक्षकों के दृष्टिकोण और उनके भेदमूलक व्यवहारों के विवरण प्रस्तुत करती है जो बताते हैं कि स्कूलों की स्थितियां अभी भी वैसी ही हैं जैसी पिछले कई वर्षों के शोध अध्ययनों में सामने आती रही हैं। मसलन हाशियाकृत और वंचित समूहों के बच्चों को शारीरिक और कठोर दण्ड, उन्हें हेय नामों से पुकारना, उनके प्रति दुराग्रह और पूर्वाग्रह पूर्ण व्यवहार, उनसे सफाई और ऐसे अन्य कार्य करवाना, उन्हें कक्षा में सहभागिता और स्कूल में आगे आने के अवसर नहीं देना इत्यादि। रिपोर्ट में प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की इन स्कूलों में विद्यमानता पर भी चर्चा की है।

जाहिर है कि बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा से वंचना के मायने हैं, वे लोकतंत्र में एक सामान्य नागरिक की भूमिका से ही नहीं पिछड़ जाएंगे बल्कि अपने लिए एक गरिमापूर्ण जीवन भी नहीं जी सकेंगे। उनके परिवार की आकांक्षाओं पर भी तुषारापात होगा। ऐसी स्थिति में आगे चलकर वे गरीबी के दुष्चक्र से घिरे रहेंगे और लोकहित के लिए निर्धारित अन्य सेवाओं की पहुंच से भी परे बने रहेंगे।

रिपोर्ट बच्चों के मुख्यधारा शिक्षा में समावेशन के लिए अधिक व्यय के प्रावधान और ठोस व प्रभावी नीतियों के साथ ही स्कूल मानचित्रण और बच्चों के वैयक्तिक मूल्यांकन जैसे तरीके सुझाती है। रिपोर्ट में पीछे रहे बच्चों के लिए विशेष शैक्षिक मदद का सुझाव है। साथ ही गलियों के बच्चों के लिए आवासीय स्कूल अथवा स्कूलों से संबद्ध छात्रावासों की अनुशंसा की गई है। कुल मिलाकर यह रिपोर्ट शिक्षा के संदर्भ में हाशियाकृत और वंचित बच्चों के विकास और भावनात्मक मुद्दों को आगे लाती है। इसे लेकर नागरिक समाज न केवल राज्य पर दबाव बना सकते हैं बल्कि समाज में भी इन बच्चों के समावेशन की पहल शुरू कर सकते हैं। ◆

'शिक्षा विमर्श' द्वि-मासिक पत्रिका
स्वामित्व एवं अन्य सूचनाओं से संबंधित विवरण

घोषणा
फार्म-4 (नियम-8)

1. प्रकाशन का स्थान	:	जयपुर
2. प्रकाशन अवधि	:	द्वि-मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	सुश्री रीना दास
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
4. प्रकाशक का नाम	:	सुश्री रीना दास
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
5. संपादक का नाम	:	विश्वंभर
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	150/10, शिप्रा पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 राजस्थान
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
7. मुद्रणालय का नाम	:	भालोटिया प्रिंटर्स
पता	:	1/398, पारीक कॉलेज रोड, जयपुर-302006 राजस्थान

मैं रीना दास एतद् द्वारा घोषणा करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

4 मार्च, 2015

रीना दास
(प्रकाशक)